'उपसंहार' में समकालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति

बीज शब्द : उपसंहार, महाभारत, काशीनाथ सिंह, नरेन्द्र कोहली, उपन्यास।

ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net

A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research

शोध संचयन

काशीनाथ सिंह द्वारा लिखा गया 'उपसंहार' उपन्यास का ताना-बाना महाभारत की उत्तर कथा को लेकर बुना गया है, परन्तु परोक्ष रूप से यह समकालीन यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति है और इसलिए यह उपन्यास आज अत्यन्त प्रासंगिक है। युद्ध, युद्ध से उत्पन्न तबाही, अकाल, महामारी, राजनैतिक और सामाजिक स्वेच्छाचारिता तथा सांस्कृतिक स्खलन इस उपन्यास के केन्द्र में है। प्रस्तुत आलेख समकालीन प्रासंगिकता के सन्दर्भ में इसकी जाँच पड़ताल करता है।

डॉ. राहुल पाण्डेय
सहायक आचार्य,
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ-०७

हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण का आरम्भ भले ही 19वीं शताब्दी से हो गया था, किन्तु उसकी सभी समस्याओं का समाधान आज भी नहीं हो सका है। हिन्दी लेखन में नवजागरण की समस्याओं पर विचार करने के लिए पौराणिक कथाओं का उपयोग आरम्भ से ही होता आया है। इन प्रासंगिक पौराणिक कथाओं में 'महाभारत' का महत्वपूर्ण स्थान है। नरेन्द्र कोहली ने 'आनुषंगिक: महासमर' खण्ड-9 में कहा है- ''महाभारत की कथा भारतीय चिन्तन और भारतीय संस्कृति की अमूल्य थाती है। यह मनुष्य के उस अनवरत् युद्ध की कथा है, जो उसे अपने बाहरी और भीतरी शत्रुओं के साथ निरन्तर करना पड़ता है। वह उस संसार में रहता है, जिसमें चारों ओर लोभ, मोह, सत्ता और स्वार्थ की शक्तियाँ संघर्षरत् हैं। मनुष्य को बाहर से अधिक अपने भीतर लड़ना पड़ता है। परायों से अधिक उसे अपनों से लड़ना पड़ता है।..... लोभ, त्रास और स्वार्थ के विरुद्ध मनुष्य के इस सात्विक युद्ध को महाभारत में अत्यन्त विस्तार से प्रस्तुत किया गया है।''[1]

आज के सन्दर्भ में महाभारत का कथानक इसीलिए प्रासंगिक है और यही कारण है कि समकालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए यह कथा बहुतेरे रचनाकारों को आकर्षित करती है। कुछ रचनाकार इसकी पूरी कथा को प्रासंगिक बनाते हैं, तो कुछ इसके किसी एक अंश की व्याख्या कर समकाल से जोड़ने का प्रयत्न करते हैं। अपनी प्रासंगिकता के कारण ही महाभारत लेखन विधा की सीमा का अतिक्रमण भी करती है। गद्य, पद्य, चम्पू-काव्य हर विधा में यह कथा हमारे सामने आती है। नरेन्द्र कोहली, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, धर्मवीर भारती की रचनाएँ इसका उदाहरण हैं।

काशीनाथ सिंह ने भी महाभारत की उत्तरकथा को प्रस्तुत कर समकालीन यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। 'उपसंहार' में महाभारत युद्ध और युद्ध के बाद का प्रभाव तथा द्वारका निर्माण के पीछे कृष्ण के गणतांत्रिक राज्य की परिकल्पना का चित्र आंका गया है, जो आज का यथार्थ है। आज के मनुष्य ने दो विश्वयुद्धों की विभीषिका देखी है, युद्ध पीड़ित नर-नारी की कराह सुनी है। यही नहीं अभी भी विकलांग संतति की उत्पत्ति का सिलसिला जारी है। चाहे 'महाभारत' का युद्ध हो, चाहे आज का युद्ध, इन सबका परिणाम, नैतिकता का ह्रास, आचरण-स्खलन, अनुशासनहीनता, पुरानी पीढ़ी की अवहेलना, समकालीन राजतंत्र और समाजतंत्र का विघटन होता रहा है।

काशीनाथ सिंह बिना किसी भूमिका के 'उपसंहार' में कृष्णकथा लेकर पाठकों से रूबरू होते हैं। अक्सर लोग जब

नयी जमीन पर कदम रखते हैं तो अपना वक्तव्य पेश करते हैं। मगर काशीनाथ अपनी शैली की बागडोर संभाले चल पड़ते हैं। किस्सागोई उनके कथन की विशेषता है। प्रेमचंद को भी यह किस्सागोई बहुत पसंद थी। 'प्रेमाश्रम' उपन्यास में प्रेमचंद ने जैसे न इधर देखा न उधर, सीधे लखनपुर गाँव पहुँच गए, उसी तरह काशीनाथ पहुँच गए 'धुंध में डूबी हुई द्वारका।'[2] यह वही द्वारका है जिसे जरासंध के आक्रमण से आक्रांत यादव कुल को बचाने के लिए कृष्ण ने बसाया था। इसमें मथुरा से जाने वाले अट्ठारह कुलों के अट्ठारह मोहल्ले थे। इन्हीं कुलों में बढ़ई, चमार, कुम्हार, गड़रिया, किसान, नाई, धोबी और वणिक सब थे और सभी गर्व से अपने को यादव कहते थे। पेशे और व्यवसाय का उनके सम्बन्धों और व्यवहार पर कोई फर्क नहीं पड़ा था। जातियों के सम्बन्धों या व्यवहार में 'फर्क न पड़ने' की समस्या कोई द्वारका या महाभारत की ही समस्या नहीं थी, यह आज की भी समस्या है, जिसकी फिक्र काशीनाथ को है, और यह यथार्थ है।

हमने ऊपर जिस 'गणराज्य' या लोक की चर्चा की है, वह इस उपन्यास में बार-बार आया है। द्वारका में कृष्ण ऐसा गणराज्य चाहते थे 'जिसमें सारे कुल मिलकर रहें, सब समान रूप से सम्पन्न और सुखी रहें, ऊँच-नीच, छोटे-बड़े की भावना न रहे, सब समान सुविधाएँ भोगें, सब निर्भय और निःशंक विचरण करें।'[3] यह तभी सम्भव है जब गणप्रमुख और कुल के मुखिया मिलकर शासन की नीति बनाएं और जो भी निर्णय करें, महाराज और युवराज उसे लागू करें। कृष्ण यह सिद्ध कर देना चाहते थे कि 'गाँव में घुसने का अर्थ है- लोक में घुसना, लोक को जानना, उसकी ज़रूरतों, उसकी इच्छाओं-आकांक्षाओं से परिचित होना। जो राजा लोक को नहीं जानता, वह अपने राज्य को नहीं जानता।'[4] कृष्ण की लोकचिंता का सबसे बड़ा उदाहरण तब आता है जब महाभारत युद्ध के बाद रोते एवं विलाप करते हुए द्वारकावासियों के बीच अपने महल में प्रवेश करते हुए वे दारुक से कहते हैं, 'किसी राजा का महल इतनी ऊँचाई पर नहीं होना चाहिए कि वह लोगों का रोना-गाना न सुन सके।'[5] इन उद्धरणों को देने का अर्थ यह है कि शासन में लोक की सक्रिय भागीदारी ही वास्तविक गणतंत्र की बुनियाद है और ऐसे वास्तविक गणतंत्र का सपना कृष्ण ने द्वारका के रूप में देखा था। गुलामी की टीस तथा युद्ध के आतंक एवं साये में जीने वाला समाज तथा उसे परतंत्रता की बेड़ी से मुक्त करने वाला अगुवा ऐसी ही आजाद गणतंत्र की परिकल्पना करता है। यह भी आज का यथार्थ है।

कृष्ण लोक के लिए, लोक द्वारा शासित एवं संचालित आदर्श गणराज्य की परिकल्पना तो करते हैं, किन्तु उसे यथार्थ के धरातल पर अधिक समय तक स्थायी नहीं रख पाते हैं। कृष्ण को लोक की चिन्ता तो है, पर उसी लोक की अनदेखी का आरोप भी उन्हीं पर लगता है। महाभारत युद्ध में कृष्ण ने बिना लोकपरामर्श के एक पक्ष से स्वयं तथा दूसरे पक्ष से द्वारका की एक अक्षौहिणी सेना के लड़ने का निर्णय लिया था। इस सन्दर्भ में द्वारका में सुधर्मा की सभा बुलाई गई थी। कृष्ण को अपने इस निर्णय में लोक की उपेक्षा नहीं दिखाई पड़ती है। नाराज बलराम कृष्ण को इसके गम्भीर परिणाम चेताते हुए वसुदेव से कहते हैं, 'महाराज, समझाइये इसे! सेना दान-दक्षिणा में दी जाने वाली इसकी निजी सम्पत्ति नहीं है। सेना तबके लिए होती है, जब कोई राष्ट्रीय आपदा हो, सीमा पर संकट हो, द्वारका में प्राकृतिक दुर्घटना हो।'[6]

सुधर्मा सभा में निष्कर्ष भी यही निकल कर आता है कि कृष्ण ने लोक की उपेक्षा की। निष्कर्ष है, 'आप अकेले द्वारका नहीं हैं। कोई भी निर्णय करने से पहले आपको हमसे, द्वारकावासियों से राय-बात करनी चाहिए थी, सलाह लेनी चाहिए थी।'[7] कृष्ण की इस लोक-उपेक्षा का परिणाम यह रहा कि महाभारत का भीषण युद्ध होता है जिसमें सहस्रों-सहस्र लोग हताहत होते हैं। लोक-भावना का अनादर करने का ही फल था कि महाभारत युद्ध विजय के बाद कृष्ण जब द्वारका लौटते हैं, तब द्वारका की लगभग पूरी जनता ही उनके स्वागत की उपेक्षा करती है।

महाभारत विजय के बाद कृष्ण द्वारका लौटे हैं। विजय की तैयारी चल रही है। द्वारका प्रवेश से पहले कृष्ण ने एक बड़ी भीड़ देखा। सारथी दारुक से भीड़ के बारे में प्रश्न करने पर उसने उत्तर दिया- 'ये अपने उन स्वजनों-परिजनों के लिए खड़े हैं, जो अब कभी नहीं लौटेंगे।'[8] कृष्ण कुछ बोले नहीं, लेकिन वे भीतर से आहत जरूर हुए। उन्होंने गौर किया कि द्वारका प्रवेश का यह पहला अवसर है, जब न कहीं से जय-जयकार सुनाई पड़ रहा है, न उनकी आरती उतारी जा रही है, न फूल मालाएँ बरस रही हैं। उनका रथ तट से राजपथ की ओर जा रहा है और लोग देख भी नहीं रहे हैं। राजपथ पर सन्नाटा था, किन्तु घरों से अपने स्वजनों से बिछुड़ने एवं कभी न देख पाने के कठोर सत्य से चीखने-चिल्लाने, रोने-विलाप करने, छातियाँ पीटने और हाय-हाय करने की आवाजें आ रही थीं।

सिलसिला यहीं नहीं थमता है, लोक के मन में कृष्ण के प्रति विरक्ति का जो भाव पैदा हुआ, वह दिनोंदिन बढ़ता ही जा रहा था। लोगों के मन में उलाहना थी। यह उलाहना राजतंत्र (गणतंत्र) जनता के भरोसे के समाप्त होने का सूचक था और यह कहीं न कहीं राजतंत्र की स्वतंत्रता की प्रतिक्रियास्वरूप लोक में स्वच्छन्द आचरण, राजशाही में अविश्वास, नैतिक पतन, अनुशासनहीनता, समाजतंत्र के विघटन की नींव तैयार कर रहा था। द्वारकावासियों में कृष्ण के प्रति बनती नकारात्मक धारणा

दिनों-दिन दृढ़ होती जा रही थी-

अभी-अभी गुप्तचर जो समाचार दे गया है
उसमें कुछ भी नया नहीं जुड़ा है रोज की तरह
कि द्वारकावासियों में उन्हें लेकर रोष है
अब भी रोज सुनाई पड़ जाता है हर तीसरे घर में
अब भी कइयों के घर खाना नहीं पक रहा है
अब भी कई परिवार कह रहे हैं कि उनके साथ धोखा हुआ है
उन्हें न गोकुल छोड़ना चाहिए था न मथुरा
अब लौटें भी तो किस मुँह से?
क्या पता कि हमें उजाड़कर उन्हें 'भगवान' बनना था?
उनके तो अस्सी के अस्सियों बेटे सुंड-मुसंड घूम रहे हैं
छुट्टा साँड़ की तरह
और हमारे तो दो ही थे, कहाँ से लायें उन्हें?
उन्हें लेकर क्यों नहीं गये लड़ाई पर?
क्यों छोड़ दिया द्वारका में घर अगोरने के लिए?[9]

इन पंक्तियों में एक ओर युद्ध विजय के अहंकार में मत्त नेतृत्व है तो दूसरी ओर युद्ध में कुर्बान नौनिहालों के स्वजनो-परिजनों की हाय है। यह हर युद्ध में होता है और आगे के युद्ध में भी बराबर लोक के साथ ऐसा धोखा होता रहेगा। यह उपन्यास इस यथार्थ का भी उल्लेख करता है।

महाभारत युद्ध के बाद हस्तिनापुर में पड़ने वाला भीषण अकाल एवं महामारी प्रायः हर युद्ध के बाद पड़ने वाले अकाल एवं महामारी की कहानी कहता है। ऐसे में राजा भी अगर इस भयावह स्थिति से निपटने में अपनी आँखें फेर ले तो यह प्रजा के लिए और भी मारक हो जाती है। हस्तिनापुर में भीषण अकाल पड़ा है। अकाल की भीषणता का उल्लेख स्वयं धर्मराज युधिष्ठिर यूँ करते हैं, ''यह जरूर है कि भीषण अकाल पड़ा है। और क्यों न पड़े? राज्य की धरती जलकर राख हो चुकी है। नदियाँ और तालाब सूख चुके हैं। खेतों में काम करने वाले युद्ध की भेंट चढ़ चुके हैं। लोग बिलबिला रहे हैं। यह अकाल कब तक चलेगा, कोई नहीं जानता।''[10], किन्तु अकाल की स्थिति में प्रजा के बीच रहकर उससे निपटने के बजाय युधिष्ठिर को तीर्थाटन की सूझती है। अकाल की वजह भी युधिष्ठिर खूब जानते हैं और उससे निपटने के उपाय भी, किन्तु इन सबके बीच तीर्थयात्रा का प्रसंग इस बात का प्रमाण है कि राज्याधिकारी सब कुछ जानते समझते हुए भी किस प्रकार लोकहित एवं लोकचिन्ता की तिलांजलि दे देता है। यह प्रसंग भी आज के समय के यथार्थ को उद्घाटित करता है।

उधर द्वारका में नैतिकता, मूल्य, अनुशासन, प्रेम, सौहार्द समाप्त होते जा रहे थे और इनका स्थान स्वेच्छाचारिता, उद्दण्डता, आचारहीनता और मनमानेपन ने ले लिया था। प्राग्ज्योतिषपुर से छुड़ाकर लाई गई सोलह हजार कन्याओं एवं स्त्रियों की कृष्ण ने द्वारका में अलग बस्ती बसाई थी। द्वारका के यदुवंशियों के बालिग होते पुत्रों के साथ उनके अवैध सम्बन्ध होने लगे। उनका अपहरण किया जाने लगा तथा उनके साथ ही नहीं, अपितु राज्य में भी 'बलात्कार' की घटनाएँ बढ़ने लगीं। बलात्कार करके हत्या भी की जाने लगी। एक कबीले का दूसरे कबीले को हीन समझना, जाति-पाँति के बनते खाँचों के बीच अन्ततः द्वारका वह न रही जिसकी परिकल्पना कृष्ण ने एक आदर्श गणराज्य के रूप में की थी। एक ऐसा गणराज्य जिसमें प्रेम, लगाव तथा एक-दूसरे के लिए त्याग हो। समूचा समाजतन्त्र स्वेच्छाचारितापूर्ण आचरण में लिप्त था और न तो उसे राजा का कोई भय था और न ही राजतंत्र में विश्वास। विडम्बना यह कि राजा भी स्वयं को इन स्थितियों में लाचार पा रहा था। उसका अपनी प्रजा पर कोई नियंत्रण नहीं रह गया था। राजनीतिक और सामाजिक स्वेच्छाचारिता की यह स्थिति कमोवेश आज की ही स्थिति है।

वस्तुतः इस उपन्यास के अन्तःतल में युद्ध और उससे उत्पन्न तबाही का दर्दनाक वर्णन काशीनाथ सिंह ने किया है। युद्ध न केवल अकाल और महामारी लाता है, अपितु हमारी समूची संस्कृति को किस प्रकार नष्ट करता है, इसकी अनुगूँज द्वारका और हस्तिनापुर, दोनों राज्यों में फैले राजनीतिक और सामाजिक अनाचार को देखने से जाना जा सकता है जिसके पीछे प्रशासकीय असहायता का अवदान कम नहीं है।

सन्दर्भः-

1. महाभारत की प्रासंगिकता, आनुषंगिक : महासमर-9, नरेन्द्र कोहली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली-110002, पृ0 171.
2. उपसंहार, काशीनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन प्रा0लि0, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, फरवरी 2014, पृ0 9.
3. वही, पृ0 23.
4. वही, पृ0 24.
5. वही, पृ0 18.
6. वही, पृ0 39.
7. वही, पृ0 39.
8. वही, पृ0 16.
9. वही, पृ0 33.
10. वही, पृ0 59.

◆◆◆